पद्मनन्दि आचार्य दिगम्बर सन्त भावलिंगी मुनि आत्मा के सहजानन्दस्वरूप में उग्ररूप से झूलनेवाले, ऐसी स्वतन्त्र स्वभाव की दशा में परमात्मा की भक्ति करते हैं। जो आदीश्वर भगवान, जिन्हें हजारों वर्ष का अन्तर, असंख्य अरब वर्ष का अन्तर पड़ा, उसका अन्तर तोड़कर ऐसे भगवान परमात्मा अरिहन्त साक्षात् जब (विराजते थे), उसकी बात है, हों! सिद्ध हुए, उसकी यहाँ बात नहीं है। ऋषभदेव भगवान सिद्ध हुए, उसकी बात नहीं है। अरिहन्त पद में मानो अभी विराजते हैं, ऐसा करके भगवान की स्तुति मुनि पद्मनन्दि आचार्य करते हैं।

वास्तव में तो स्तुति में दो प्रकार हैं। वह यहाँ कहते हैं, देखो! तीन गाथाएँ तो हुई न? तीन गाथा हुई। प्रभु! आपको चर्मचक्षु से देखे, उस पर हर्ष का पार तीन लोक में नहीं समाता, इतना होता है, तो जिसने इस ज्ञान, ज्ञान की वर्तमान दशा द्वारा ज्ञायक को पहचानकर ज्ञायक की पूर्णता जिसने प्राप्त की, उसके आनन्द और अतीन्द्रिय निर्विकल्प अर्थात् रागमिश्रित दशा छूटकर अरागी वीतरागी आत्मा की स्तुति, भक्ति जो परिणति हो, उसके आनन्द का क्या कहना? शान्तिभाई! यह स्तुति करते हैं ऋषभदेव भगवान की। समझ में आया? यह तो आगे अभी आयेगा, माता की बात और वह।

इस प्रकार इन्द्र, भगवान का जब जन्म होता है—यह देह की स्थिति, अन्तर जन्म तो अपनी निर्मल पर्याय में होता है और वृद्धिगत होता है। जब भगवान जन्मते हैं देह से निमित्तरूप से मरुदेवी माता के गर्भ से, (तब) इन्द्र आते हैं। इन्द्र आकर माता को वन्दन करते हैं। नमो रत्नकूखधारिणी! हे रत्न को कूख में रखनेवाली माता! भाषा तो सरल है। समझ में आता है न? नेमचन्दजी! थोड़ा-थोड़ा ध्यान रखे तो समझ में आये, (ऐसी बात है)। इन्द्र आकर माता का स्तवन करता है। माता! आपके गर्भरूपी सन्दूक रत्न का, उसमें भगवान आये और जन्मे, माता! नमो—नमस्कार करता हूँ। आप जगत की माता हो। भगवान की माता, वह जगत की माता।

फिर कहते हैं, बालवय हों! अभी। भगवान को तो तीन ज्ञान हुए हैं। तीन ज्ञान

तो लेकर आये हैं। कहते हैं कि माता! यह आपका पुत्र जो है न, यह 'पुत्र तुम्हारा स्वामी हमारा, तरणतारण जहाज रे...' तीन ज्ञान के स्वामी इन्द्र को शुभ विकल्प से जब भक्ति उछलती है। माता के गर्भ में से (जन्म होने के पश्चात्) जब मेरुपर्वत पर स्नान कराकर और लाकर गोद में जब स्थिर अर्थात् स्थापित करते हैं, तब इन्द्र कहता है,

पुत्र तुम्हारा स्वामी हमारा, तरणतारण जहाज रे
माता यत्न करके रखना....

केवलचन्दभाई! कौन कहता है यह? केवलचन्दभाई!

माता यत्न करके रखना, तुम सुत हम आधार रे....

हे माता! तुम्हारा पुत्र हमारा आधार है। देखो! एक व्यवहारभक्ति विकल्प उठने पर भी कितनी होती है! समझ में आया? इसी प्रकार माता-पिता को नहीं कहते कि आप तो सिरछत्र हो। आपकी छत्रछाया में पिताजी हम उच्छर्या, बड़े हुए, हमें आपका विरह पड़ता है। अन्तिम स्थिति में ऐसा कहते हैं या नहीं? चन्दुभाई! आपकी छत्रछाया के तले हम बड़े हुए, मलाया, आपने हमें सुलाया। अब आप चले जाते हो, हमें अन्दर विरह लगता है। यह तो बाहर के अशुभराग की बात है।

इन्द्र भी ऐसे भगवान का शरीर देखता है। स्नान कराकर लाता है। यह शरीर तो देखो कैसा! जन्मते... लेकर वहाँ ऐसे पाण्डुकशिला पर विराजमान करे और कितने जल का बड़ा घड़ा ऐसा आता है। १०८ कलश सिर पर डाले।

मुमुक्षु : डॉक्टर कैसे माने?

पूज्य गुरुदेवश्री : डॉक्टर कितने हैं इसमें? चन्दुभाई एक है या दूसरा है कोई?

भाई! जिसका आत्मस्वरूप अन्तर में आनन्द-सच्चिदानन्द ध्रुव को खिलने की कली जिसे अन्दर परिणम गयी है, परन्तु अपूर्णता है, इसलिए राग था, (इससे) तीर्थंकर गोत्र बँध गया; इसलिए शरीर का संयोग आया परन्तु वह शरीर भी ऐसा होता है। जैसे चैतन्य ध्रुव वज्रमय चैतन्य प्रभु, उसकी दृष्टि में एकाकार होकर उत्कीर्ण करके परिणमन करता है, उसमें बाकी रहा हुआ राग, उसका पुण्य बँधा, उसमें शरीर मिला। ऐसा शरीर कि हजार कलश, १०८ कलश में कितना पानी, कितनी बड़ी-बड़ी बातें हैं। है, हों!

सब ऐसा है। दूसरा तो जन्मते ही पानी एक बार डाले तो मर जाए। चन्दुभाई!

अरे! भाई! यह आत्मा का स्वभाव अचिन्त्य और उसकी भूमिका में होता राग और पुण्य भी कोई सत् पुण्य है। उस पुण्य को भी सत् पुण्य कहा जाता है। समझ में आया? आत्मा की अखण्डानन्द चैतन्य ज्योति जो निर्मलानन्द, जिसका पर से पृथक् रूप से, संयोग और राग से पृथक्रूप से जिसकी—चैतन्य की झलक अन्दर दृष्टि में लेकर उठी है, ऐसे वज्रमय चैतन्य की सम्हाल में जो कुछ विकल्प भगवान की भक्ति आदि का आता है कि तीर्थंकरों को, जगत के जीव धर्म समझे, ऐसी वृत्ति उठती है कि मैं पूर्ण होऊँ, यह वृत्ति होती है, उसके फल में शरीर वज्र... वज्र जैसा। चाहे जितना पानी गिरे। ऐसा स्नान (जन्माभिषेक) कराकर माता की गोद में रखते हैं।

(इन्द्र कहता है) माता! यह पुत्र तो तुम्हारा, परन्तु हमारा स्वामी है, हों! ले! ऐ इन्द्र! परन्तु तू एकावतारी क्षायिक समकिती, एक भव वहाँ से करके मनुष्य होकर मोक्ष जानेवाला। परन्तु यह स्वरूप की भक्ति जिसे प्रगट हुई है, उसे स्वरूप को प्राप्त पुरुष के प्रति भक्ति का ऐसा भाव आये बिना नहीं रहता। चन्दुभाई! तथापि ज्ञानी समझता है कि यह राग बन्ध का कारण है, पुण्यबन्ध का कारण है, हेय है, वास्तव में आदरणीय नहीं। व्यवहार से व्यवहार आदरणीय है, ऐसा जानते हैं। परमार्थ दृष्टि में वह आदरणीय नहीं है। आधार, माता! तुम्हारा पुत्र तो हमारा स्वामी और हमारा आधार है। तरणतारण है। माता यत्न करके (रखना)।

और एक ओर क्रमबद्ध में होना हो, वह होता है। और यह क्या? भाई! ऐसे विकल्प आते हैं और ऐसी वाणी भी वाणी के काल में निकलती है। यत्न करके रखना, माता! यह बड़ा होगा, मुनि होगा, केवलज्ञान प्राप्त करेगा। हमारा आधार है। हमें समवसरण में इनसे दिव्यध्वनि सुनना है। ऐसा भाव सम्यग्दृष्टि जीव को आये बिना नहीं रहता।

यहाँ अब उनके ज्ञान की व्याख्या करते हैं, देखो! प्रभु! आपका ज्ञान कैसा है? देखो! यह ज्ञान। पूर्ण प्राप्त हुए, तब की बात। यह तो शुरुआत में इन्द्र ऐसी भक्ति करते हैं। जब पूर्ण ज्ञान पाते हैं, तब उस ज्ञान का विस्तार कैसा? ऐसा लक्ष्य में लेकर पद्मनन्दि आचार्य भगवान की स्तुति कर रहे हैं।

गाथा - ४।

गाथा ४

अब, चौथे श्लोक में स्तुतिकार अपनी निर्मानता बतलाते हुए कहते हैं–

तं जिण णाणमणंतं विसईकयसयलवत्थुवित्थारं।
जो थुणइ सो पयासइ समुद्दकहमवडसालूरो।।४।।

अर्थ :– हे जिनेन्द्र! जो पुरुष, नहीं है अन्त जिसका तथा जिसने समस्त वस्तुओं के विस्तार को विषय कर लिया है – ऐसे ज्ञानस्वरूप आपकी स्तुति करता है, वह कुएँ का मेंढ़क समुद्र की कथा का वर्णन करता है।

भावार्थ :– जिस प्रकार कुएँ का मेंढ़क समुद्र की कथा नहीं कर सकता, उसी प्रकार हे जिनेन्द्र! जो पुरुष ज्ञानस्वरूप आपका स्तवन तथा आपको नमस्कार नहीं करता, उसका ज्ञान समस्त पदार्थों का विषय करनेवाला नहीं होता किन्तु जो मनुष्य आपकी भक्तिपूर्वक स्तुति करता है, उसको विस्तृत ज्ञान की प्राप्ति होती है।

गाथा - ४ पर प्रवचन

तं जिण णाणमणंतं विसईकयसयलवत्थुवित्थारं।
जो थुणइ सो पयासइ समुद्दकहमवडसालूरो।।४।।

हे जिनेन्द्र! जिसने समस्त वस्तुओं के विस्तार को विषय कर लिया है, ऐसे अनन्त ज्ञानस्वरूप आपकी जो पुरुष स्तुति करता है, वह पुरुष कुपमण्डूक (कुएँ का मेंढ़क समुद्र के विस्तार का वर्णन करता है), उसके जैसा है। जरा क्या कहते हैं भक्ति करते हुए? भगवान परमात्मा, हे नाथ! यह शुभ विकल्प उठता है न हमें, आपके अनन्त.. अनन्त.. बेहद एक समय में, सेकेण्ड के एक असंख्यवें भाग में तीन काल-तीन लोक का जो विस्तार, सामान्य और विशेष, एक-एक समय की पर्याय, प्रभु! आपके ज्ञान में प्रत्यक्षरूप से ज्ञात होती है। समझ में आया?

भगवान के केवलज्ञान में सर्व पदार्थ का विस्तार क्षेत्र से, काल से, द्रव्य से और भाव से जितना स्वरूप है, वह भगवान के ज्ञान में आ गया है। कहते हैं कि भगवान!

आपके इस केवलज्ञान की स्तुति किस प्रकार हो? मेंढ़क कुएँ में रहा हुआ, उसे समुद्र का एक मेंढ़क का उसके कुएँ में। तब समुद्र का मेंढ़क कहता कि भाई! मैं जिस स्थान में रहता हूँ न, वह स्थान बहुत बड़ा है। कुएँ का मेंढ़क पेट फूलाकर कहते हैं कि इतना? इतना तो नहीं होगा तेरा स्थान? भाई! यह माप ऐसे आवे, ऐसा नहीं है। उस कुएँ के अन्दर की पेढली में एक पेढली से दूसरी पेढली में कूदकर कुएँ का मेंढ़क पड़े कि ले, तेरे समुद्र का माप इतना तो होगा न? और इससे कितना अधिक होगा? नहीं, नहीं, भाई! यह तेरे पेट के फुलाव से समुद्र का माप नहीं आता। परन्तु तेरे फुदक्के-फुदक्के से भी उस समुद्र का माप नहीं आता।

इसी प्रकार सर्वज्ञ परमात्मा की विकल्प के भाव द्वारा, शुभराग द्वारा उनकी स्तुति करे, प्रभु! पार नहीं आता। उनकी केवलज्ञान की—परमात्मा की स्तुति विकल्प द्वारा पार नहीं पड़ती। वह तो राग से रहित होकर अन्तर चैतन्य के ज्ञान में गुम हो, स्वभाव की शक्ति के पिण्ड में प्रभु आत्मा स्वयं गुम हो, तब ही वह भगवान की स्तुति कर सके, ऐसा कहने में आता है। कहो, वजुभाई!

यहाँ तो भाई! भगवान के पास बहुत स्तुति और भक्ति करे। 'तार जो रे तार जो महाराज शिवपद हमको देना।' स्तुति आती है या नहीं? केवलचन्दभाई! कहते हैं, बापू! यह सर्वज्ञ परमात्मा द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव (सर्व को जानते हैं)। द्रव्य अर्थात् वस्तु अनन्त है, क्षेत्र अनन्त है, काल अनादि-अनन्त है; भाव—एक-एक द्रव्य के अनन्त गुण, इस संख्या से माप आवे ऐसा नहीं है। और उनकी तीन काल की पर्यायें भगवान के ज्ञान में आयी, उनकी स्तुति शुभराग द्वारा हो सके, ऐसा है नहीं। वह तो व्यवहारस्तुति है, कहते हैं। तुम्हारी निश्चयस्तुति तो जिसने की, उसे केवलज्ञान हुए बिना नहीं रहता। समझ में आया?

इसमें ही विवाद उठा है न अभी बहुत। भगवान ने ज्ञान में सब देखा है। परन्तु सब नियत-अनियत दो देखा है। बड़े-बड़े नाम धरानेवाले अभी ऐसी गड़बड़ करते हैं। भगवान ने देखा परन्तु जगत के पदार्थ जिस समय में, उसी समय में यह पर्याय होगी, ऐसा नहीं। उल्टी-सीधी भी हो, उसे भी जाने और क्रमसर हो, उसे भी जाने। नेमिदासभाई! ञ्चया करते हैं, कुछ खबर नहीं पड़ती। इन भगवान को पहिचानते हैं और भगवान की

बात करते हैं या नहीं, यह उन सर्वज्ञ की। आचार्य (कहते हैं), एक समय का ज्ञान, प्रभु! आपके ज्ञान का विस्तार अपार-अपार! ओहोहो!

एक आत्मा का एक ज्ञानगुण, शक्ति, सत्त्व और उसकी एक समय की पूर्ण प्रगट हुई दशा की स्तुति करनेवाला (कहता है), अपार... अपार... अपार है। प्रभु! यह आपकी विकल्प द्वारा स्तुति करते हैं, वह तो कुएँ के मेंढ़क जैसे हैं। समझ में आया? उसे आत्मा का ज्ञान तीन काल-तीन लोक को जाने, ऐसा विस्तारपने का विषय उसे प्रगट होगा नहीं, ऐसा कहते हैं। चन्दुभाई! तेरी भक्ति में भी यह! यह प्रभु आत्मा एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में चैतन्य ज्योति स्वभाव के सामर्थ्य से भरी है। उसमें डुबकी लगाकर जो आपकी स्तुति अर्थात् कि स्व की स्तुति करे, वह आपकी स्तुति वास्तव में करता है और उसे ज्ञान में तीन काल-तीन लोक का विस्तार ख्याल में अर्थात् ज्ञान के परिणमन में आ जाता है और वह वास्तविक भक्ति करनेवाला तथा स्तुति करनेवाला ऐसा कहने में आता है। कहो, समझ में आया? सुनाई देता है? ऐसे दूर क्यों बैठै हो?

जिस प्रकार कुएँ का मेंढ़क समुद्र की कथा नहीं कर सकता। कहाँ समुद्र का माप! केवलज्ञान अर्थात्? लोग ऐसा कहते हैं कि वर्तमान में विचारकों में विशिष्ट जो हो, वह केवलज्ञानी कहलाता है। जब.. जब.. उस-उस काल में विशिष्ट विचारक हों, उसे सर्व को जाननेवाला ऐसा सर्वज्ञ कहा जाता है। अरे! भगवान! तू तो कुएँ के मेंढ़क जैसा तेरा फुदक्का है। उसे केवलज्ञानी नहीं कहा जाता। बापू! अरिहन्त। णमो अरिहंताणं। नमस्कार हो अरिहन्त को। कब होगा? कि जब अपना आत्मा रागरूपी शत्रु को रुचि में से भगाकर और स्वभाव चैतन्य की झलक सर्वज्ञ परमात्मतत्त्व मैं हूँ—ऐसी दृष्टि करे, तब उसे केवलज्ञान की स्तुति कहा जाता है। शान्तिभाई! भारी बातें, भाई! इस केवलज्ञान की उसने स्तुति की। अकेले ज्ञान की स्तुति करके राग को मिलाये बिना। अकेले ज्ञानस्वभाव की स्तुति की, वह केवलज्ञान पानेवाला है। उसे तीन काल और तीन लोक का ज्ञान एक समय में आनेवाला है।

तब कहते हैं उन्होंने जाना, तद्नुसार होवे तो फिर अपने पुरुषार्थ कहाँ रहा इसमें। अब बड़ा विवाद है न। आज क्रमबद्ध चला अपने, अभी एक से ढाई चला न! जाना, वैसा होता है। अभी यह विषय आया नहीं, बाद में लेंगे। क्रमबद्ध जहाँ बाहर

प्रमुखरूप से आया, तब यह सब सर्वज्ञ में भी, केवलज्ञानी में भी विवाद उठाने लगे। यह अब आयेगा, नहीं? भगवान! वीर हो।

जो तेरी चीज़ है, वह चीज़ तो अकेला ज्ञान का सत्त्व है। और ज्ञान का सत्त्व जो है, एक मिश्री की... क्या कहलाती है वह? सैकरीन। क्या कहते हैं उसे? सैकरीन होवे थोड़ी परन्तु मिठास कितनी होती है? परमाणु मिट्टी में भी मिठास बड़ी मिश्री की डली और सैकरीन। कितना मिठास का अन्तर! यह मिठास, वह उसकी दशा है, वह उसकी अवस्था है। गुण तो उसमें रसरूप पड़ा, वह त्रिकाल है। परमाणु में भी। तो उस मिठास में भी उस मिश्री की डली की अपेक्षा सैकरीन में मिठास का स्वाद कितना? यह सब अवस्था कहाँ से हुई? उस परमाणु के रसगुण में से आयी है।

इसी प्रकार भगवान आत्मा, वह सर्वज्ञ परमात्मा कहाँ से हुए? कहते हैं कि जो आत्मा का अन्तर सर्वज्ञस्वभाव, उसका अन्तर आश्रय लेकर, प्रतीति-अनुभव करके सर्वज्ञ हुए। ऐसी प्रतीति और अनुभव करे, वह भगवान की स्तुति करनेवाला कहलाता है और विकल्प उठे, वह व्यवहारस्तुति कहने में आती है। निश्चयस्तुति होवे तो उसके विकल्प को व्यवहारस्तुति कहने में आती है। व्यवहार, वह पुण्यबन्ध का कारण, निश्चयस्तुति वह मुक्ति अर्थात् वर्तमान राग से मुक्त होने का कारण। समझ में आया? उसमें भी विवाद (करते हैं)। नहीं, भगवान की पूजा में शुभभाव है। उस शुभभाव में संवर, निर्जरा किंचित है। अरे! शुभभाव में संवर-निर्जरा नहीं, वह तो आचार्य भक्ति में बात करते हैं, तब ऐसा ही करे न, प्रभु! आपकी स्तुति करे, इसलिए आपकी अर्थात् आत्मा की, ऐसा। ओहोहो! बहुत अन्तर है।

महिमा करे, जिसके केवलज्ञान की महिमा। केवलज्ञान की सत्ता का स्वीकार। एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में केवलज्ञान की अस्ति इस जगत में है, ऐसा स्वीकार, उस सत्ता के चैतन्यस्वभाव का आश्रय लिये बिना उसका स्वीकार नहीं होता और उसे केवलज्ञान प्रगट हुए बिना नहीं रहता। कहो, समझ में आया? वह भगवान को देखता है। वह भगवान को देखता है कब कहलाये? कि भगवान महिमावन्त आत्मपदार्थ है, उसकी प्रतीति और ज्ञान किया, तब भगवान को व्यवहार से देखा और अपने भगवान को निश्चय से देखा, उसे केवलज्ञान हुए बिना नहीं रहता।

हे जिनेन्द्र! जो पुरुष ज्ञानस्वरूप आपका... देखो! आप तो ज्ञानस्वरूप हो, प्रभु! आप तो ज्ञानस्वरूप हो। स्व-रूप हो ज्ञान का। मैं भी एक ज्ञानस्वरूप आत्मा हूँ। रागादि और पर आदि मेरा स्वरूप नहीं है। **आपका स्तवन...** है न? **तथा आपको नमस्कार नहीं करता, उसका ज्ञान समस्त पदार्थों को विषय करनेवाला नहीं होता।** आपकी स्तुति नहीं करता, आपकी भक्ति नहीं करता। अर्थात्? कि आपने कहा हुआ आत्मतत्त्व, उस निजतत्त्व की अन्तरस्तुति-भक्ति एकाग्रता नहीं करता, **उसे सकल लोक का विषय हो, ऐसा केवलज्ञान कभी प्रगट नहीं होता।** कहो, समझ में आया? बीच में शुभभाव आवे, उसका हर्ष समाये नहीं, इतना पुण्य बँधता है और यह पवित्रता की प्रगट दशा होती है, उसे वास्तविक स्तुति और भक्ति कहते हैं। **परन्तु जो मनुष्य आपकी भक्तिपूर्वक स्तुति करता है, उसे विस्तृत ज्ञान की प्राप्ति होती है।**

पाँचवीं (गाथा)

गाथा ५

अब, इस श्लोक में नामनिक्षेप लेकर स्तुतिकार कहते हैं-

अम्हारिसाण तुह गोत्तकित्तणेण वि जिणेस संचरइ।
आएसं मग्गंती पुरओ हियइच्छिया लच्छी।।५।।

अर्थ :- हे जिनेन्द्र! हे प्रभो! आपके नाम के कीर्तनमात्र से ही हम सरीखे मनुष्यों के आगे आज्ञा को माँगती हुई मनोवांछित लक्ष्मी गमन करती है।

भावार्थ - हे जिनेन्द्र! आपके नाम में ही इतनी शक्ति है कि आपके नाम के कीर्तनमात्र से ही हम सरीखे मनुष्यों के सामने हमारी आज्ञा को माँगती हुई लक्ष्मी दौड़ती फिरती है। तब जो मनुष्य साक्षात् आपको प्राप्त कर लेगा तो फिर उसकी बात ही क्या है? अर्थात् उसको तो अवश्य ही अन्तरंग तथा बहिरंग लक्ष्मी की प्राप्ति होगी।

गाथा - ५ पर प्रवचन

अम्हारिसाण तुह गोत्तकित्तणेण वि जिणेस संचरइ।
आएसं मग्गंती पुरओ हियइच्छिया लच्छी।।५।।

ओहोहो! देखो यह। हे परमात्मा! हे सर्वज्ञदेव! अरिहन्त प्रभु ऋषभनाथ पूर्णानन्द को प्राप्तिरूप पुरुष! **हे जिनेन्द्र!** हे प्रभु! **आपके नाम के कीर्तनमात्र से...** पाठ में है न? **'गोत्तकित्तणेण' 'गोत्तकित्तणेण'** यह गोत्र तो निमित्त से बात है। समझ में आया? भगवान ऋषभदेव इस गोत्र के थे। नाभिराजा के पुत्र थे, ऐसे आपका नाम **कीर्तनमात्र से भी हम सरीखे...** लो! मुनि कहते हैं। **आपके नाम के कीर्तनमात्र से भी हम सरीखे मनुष्यों के आगे आज्ञा माँगती हुई लक्ष्मी दौड़ती हुई घूमती है।** लो! क्या कहते हैं यह? भगवान! आपका जो ज्ञान और आनन्दस्वरूप, ऐसे जिसमें आप अवतरित हुए, उसका नाम ले न, नाम; परन्तु उस नाम में उस स्वरूप का स्मरण आवे, उसे नाम कहा जाता है। नाम आत्मा। अतति गच्छति इति आत्मा। अपने सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र में परिणमन करे, उसे आत्मा कहा जाता है। ऐसा आत्मा जहाँ जन्मे, उसके गोत्र का नाम लेने से उस आत्मा का स्मरण होता है। समझ में आया?

मुमुक्षु : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, उसका है। अकेले नाममात्र से तो पुण्य बँधता है। ऐई! केवलचन्दभाई! यह सब विपरीतता लगा दे सबको कि देखो भाई! भगवान का नाम (लेने से ऐसा होता है)। आती है न बात एक वृद्धा की? बहुत वर्ष पहले सुनी थी, एक माटली गाँव है न? कहाँ गये धीरुभाई? नहीं? माटली गाँव है न तुम्हारे गाँव के पास। नहीं? जामनगर के पास। माटली है न, माटली। मटवा माटली। माटली में गये थे, वहाँ एक ब्राह्मण आया। बहुत वर्ष की बात है, हों! यह (संवत्) १९८१ का वर्ष। ८१ के वर्ष की बात है। पश्चात् वहाँ आया। कहता है कि, ओहोहो! नाम में ऐसा गुण है! क्या है नाम में? इस तुम्हारे गाँव का नाम माटली है, कहा। माटली (नाम होवे तो) वह माटली पानी भरने की हो गयी? इसी प्रकार भगवान का नाम... (तब वह कहे), हाँ, हाँ। एक वृद्धा थी। ऐसा उसने दृष्टान्त दिया। वृद्धा थी तो कभी भगवान का नाम—राम

का नाम ले नहीं कभी। फिर उसे मरते-मरते मरते उसको राम का नाम लेने के लिये एक अच्छा रामपात्र (मँगाया)। रामपात्र होता है न, रामपात्र? वह रामपात्र बताया। बुढ़िया! क्या है यह? तो वह भड़ की पुत्री थी। इसलिए कहती है कि यह सकोरा है। यदि राम का नाम ले, यह रामपात्र ऐसा कहे तो बेड़ा पार हो। धूल में भी नहीं होता। कुँवरजीभाई! वह भी बोली सकोरा, वापस रामपात्र नहीं कहा।

मुमुक्षु : गाँव के....

पूज्य गुरुदेवश्री : गाँव में तो रामपात्र.... बेचारी को उसे खबर भी नहीं कि यह क्या है।

मुमुक्षु : वह रामपात्र कहलाता है, इतनी भी खबर नहीं होगी।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह उसे खबर भी न हो। यह सकोरा कहलाता है। सकोरा? राम का नाम लेने के लिये सकोरा लाया तो भी राम का नाम नहीं लेती। यदि राम का नाम ले तो उसका कल्याण हो जाए। ऐसा नहीं है धूल में भी। णमो अरिहंताणं... अरिहंताणं... अरिहंताणं... रटकर मर जाए। अनन्त बार जाप करे तो वह शुभभाव है। वह कहीं धर्म-बर्म नहीं है। उससे कल्याण नहीं है। शान्तिभाई!

मुमुक्षु : भगवान का नाम कोई नहीं लेगा।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो नाम आये बिना रहता नहीं। यहाँ भी यह कहा है और वहाँ भी कहा है न! अनुभवप्रकाश में, नहीं? वहाँ भी कहा है दीपचन्दजी ने। प्रभु! आपके नाम में ऐसी ताकत है कि नाममात्र लेने से भी पाप का नाश हो जाए और कल्याण हो जाए। इसका अर्थ यह है कि वह नाम जिसका है, उसका आत्मा किस प्रकार की चीज़ को प्राप्त हुआ है, वह चीज़ मेरी चीज़ में वह वस्तु भरी हुई है, ऐसा नाम नाम नमन। नमन अर्थात् झुकना अर्थात् ढलना अर्थात् जुड़ना। अन्तरस्वरूप पूर्णानन्द ज्ञान से भरपूर है, उसमें नमे, उस भगवान का नाम लिया कहलाता है। कहो, समझ में आया? धन्नालालजी कहाँ हैं? नाम में लिखा है, देखो!

मुमुक्षु : अन्तरंग में जब तक न जाए...

पूज्य गुरुदेवश्री : अन्तरंग में नमन... नमन होता है। नमन नमन में अन्तर है।

समझ में आया? एक... ऐसे दूसरे को पकड़ना हो तो ऐसे नमन करके पकड़ता है। तेंदुआ होता है न? तेंदुआ को पकड़ते हैं। विनय... विनय... विनय से ऐसे (नमते हैं)। प्रभु! भगवान के पास सिंह आवे, बाघ आवे समवसरण में। ऐसे दो पैर नीचे रहे। होवे सिंह। और फणीधर नाग जंगल में से भगवान के दर्शन करने आवे समवसरण में। वहाँ तो उसे हाथ कहाँ है? ऐसे मुख नम्रीभूत हो जाता है। ऐसे ऊपर से फण माँडे न सामने? वह फण ऐसे नहीं माँडकर सिर ऐसे-ऐसे करता है। वह नमन अन्दर के शुभविकल्प से सर्वज्ञ परमात्मा का बहुमान करता है, उसे पुण्य बन्धन होता है और जो सर्वज्ञस्वभावी प्रभु आत्मा में नमा है और राग की अधिकता जिसने दृष्टि में से छोड़ी है और जिसने स्वभाव की अधिकता दृष्टि में ली है, उसने भगवान का नाम लिया - ऐसा परमार्थ से कहने में आता है। आहाहा! गजब बात, भाई! इसमें तो ऐसा है, देखो! अर्थ बदल डालते हो। चन्दुभाई! सब लोग आरोप देते हैं, लो! सत्य बात है?

हमारे जैसे मनुष्य के पास आज्ञा माँगती लक्ष्मी दौड़ी आती है। एक तो यह कि हम हमारे चैतन्यस्वभाव में प्रभु आपकी शक्ति की जो व्यक्तता हुई, उसका हमारे में सामर्थ्य है, ऐसे नमे तो अन्तर की लक्ष्मी भी दौड़ती हुई अल्प काल में आती है और आपकी भक्ति का जो शुभराग हुआ, उसमें ऐसा पुण्य बँधे, जहाँ जाओगे वहाँ लक्ष्मी सामने आज्ञा माँगती आयेगी। क्या चाहिए, क्या पैसा, क्या इज्जत-कीर्ति का ढ़ेर ऊपर से। तीर्थंकरपना समवसरण मिले। उसके जैसी लक्ष्मी कोई इन्द्र की ऋद्धि (भी नहीं है)। यह भगवान के स्मरण की स्तुति, स्वभाव के भूमिका के भान में ऐसा राग होवे तो बाहर की लक्ष्मी दौड़ती आती है, ऐसा कहते हैं। दौड़ती आती है, हमें ढूँढ़ने जाना नहीं पड़ता। गोतवा समझते हो? शोधना-शोधन। ढूँढ़ना नहीं पड़ता। अतः लक्ष्मी दौड़ती आती है। लक्ष्मी शब्द से इज्जत, कीर्ति, पैसा यह सब लक्ष्मी में जाता है। पुत्र, पुत्री, स्त्री, जगत में ठाठ-बाट जो कहलाता है, वह प्रभु! आपकी भक्ति के शुभराग में वह लक्ष्मी दौड़ती आती है। अर्थात् हमें हठ से प्राप्त करना और प्रयत्न से प्राप्त करना, ऐसा हो नहीं सकता। और आत्मा का स्वभाव, उसमें हमारा नमन हो, वह तुम्हें ही हम नमे हैं। तब ही हमने आपकी स्तुति की कहलाती है। इससे हमारी केवलज्ञान लक्ष्मी भी अल्प (काल में प्रगट होनेवाली है)।

.... अर्थात् इतनी लक्ष्मी आवे, इसका अर्थ यह कि इच्छा मन्द होने पर भी लक्ष्मी के ढ़ेर, इज्जत के ढ़ेर, कीर्ति के ढ़ेर (होते हैं)। तीर्थंकर जहाँ उपजते हैं, अरे! महापुण्यानुबन्धी पुण्य आत्मा के भान की भूमिका में जहाँ बँधता है, वह पुत्र जहाँ जन्मता है, वहाँ के आगे-पीछे के पत्थर नीलमरूप परिणमित हो जाते हैं और समुद्र की मछलियों में मोती पके, ऐसी लाखों मछलियाँ जहाँ कुँवर जन्में (वहाँ होती है)। जिसने भगवान की भक्ति की है अर्थात् चैतन्य सच्चिदानन्द चैतन्य चमत्कार की प्रीति, रुचि को जिसने उसे प्रीतम बनाया है, ऐसे परमात्मस्वरूप का अपना ध्यान किया है, उसकी लक्ष्मी अन्तर की तो दौड़ती आती है अल्प काल में, परन्तु शुभराग हुआ, वह जहाँ जाए वहाँ उसे दुनिया से हिस्सा नहीं करवाना पड़ता। (हीन पुण्यवान की) लक्ष्मी इज्जत-कीर्ति उसकी चली जाती है। अभी देखो न यह राजा। पशु कर (टैक्स) और यह क्या करते हैं सब? उत्तराधिकार कर चूल्हा कर। डालते हैं न सब? चूल्हा कर नहीं? कहो, समझ में आया? आगे था पहले। यह दूसरे प्रकार से लूटने की एक पद्धति है। परन्तु उसमें जो ऐसे पैसे को प्राप्त करे वह राजा, वह राजा नहीं है। राज्यते इति शोभते इति राजा।

प्रभु! हम हमारे चैतन्य के... आपको प्रगट (हुई) परमात्मदशा के भान की भूमिका की हमने रुचि, दृष्टि और प्रतीति की है। उसके भान में हमें केवलज्ञान भी अल्प काल में दौड़ता आयेगा। दौड़ता आयेगा, ऐसा कहते हैं। और शुभराग से बाह्य लक्ष्मी भी आज्ञा माँगती हुई सामने जाएगी। हम जहाँ जन्मेंगे वहाँ हमारे समक्ष ऐसा स्थल (आयेगा)। ऐसे स्थल, ऐसे माता-पिता, ऐसे क्षेत्र, ऐसा संयोग, ऐसे मित्र, वे सब वहाँ उपस्थित होंगे। हमें प्राप्त करना नहीं पड़ेंगे। कहो, समझ में आया?

यह वह बात नहीं करते? एक पुण्यहीन प्राणी था, तो यहाँ घर में हमेशा ज्वार की रोटी और कलथी खाता था। कलथी समझते हो? कलथी होती है। कुलथी समझते हो? धन्नालालजी! काला इतना छोटा कठोर अनाज होता है। तो घर में ज्वार... ज्वार समझते हो? ज्वार की रोटी और कुलथी खाता था। एक बार विचार हुआ कि सदा का यह है। लाओ न आज लड़की और बहिन के यहाँ जाऊँ। वहाँ तो लापसी और लड्डू मिलेंगे। वहाँ जाता है, वहाँ उसे भी घर में नयी ज्वार आयी हुई थी और कुलथी नयी

आयी हुई थी। उन्हें विचार हुआ कि आज ज्वार की रोटियाँ और कुलथी बनावें। उसमें वह ठीक दस बजे आया। आओ... आओ... जहाँ कुलथी और रोटी पड़ी, जयनारायण। सामने आकर पड़ गया। मैं मानो कि इसे छोड़कर ऐसा और कहीं बहिन-पुत्री के यहाँ जाऊँ तो लापसी मिलेगी। शान्तिभाई! जय ज्वार माता! मेरे नसीब में यह सामने थी। वे कहें, परन्तु नयी ज्वार ऐसी ताजा आयी है और कुलथी भी... कुलथी मेवा कहलाती है, हों! सब्जी ऐसी सरस बनायी है। चढ़ गया फर्स्ट क्लास, पच जाएगी तुम्हारे। बाजरे की रोटी या ज्वार की। डाला उसमें घी और... यह उसके इस नसीब में सामने आया यह तो।

यहाँ सर्वज्ञ की स्तुति करते हुए मुनि महाराज भावलिंगी सन्त हैं, (ऐसा कहते हैं), हम जहाँ जाऐंगे, वहाँ पुण्य के फल सामने आयेंगे। समझ में आया? और पवित्रता प्रगट होने की दौड़ती है। अर्थात्? अल्प काल में—शीघ्र काल में हम केवलज्ञान लेनेवाले हैं और पुण्य के संयोग भी हमें दौड़ते हुए आनेवाले हैं। यह प्रभु! आपकी भक्ति का फल है। ऐसा कहकर विनय से वर्णन करते हैं। भगवानजीभाई!

हे जिनेन्द्र! आपके नाम में भी इतनी शक्ति है। नाम में शक्ति है, ऐसा लिखा है, देखो! कि **आपके नाम के कीर्तन मात्र से ही हमारे जैसे मनुष्यों की आज्ञा मात्र से लक्ष्मी-कीर्ति...** समझ में आया? लक्ष्मी **दौड़ती-फिरती है।** लो! **आज्ञा माँगती हुई।** तो फिर जो मनुष्य साक्षात् आपको प्राप्त कर लेता है, साक्षात् प्राप्त कर लेता है अर्थात् आत्मा का साक्षात् रागरहित, मन के संग रहित असंग पदार्थ को साक्षात् प्राप्त करे, उसको तो क्या कहना? उसकी बात ही क्या? **उसे तो अवश्य अन्तरंग तथा बाह्य लक्ष्मी की प्राप्ति होगी।** देखो! यह भगवान की भक्ति। यह समझ की भान की भूमिका में भक्ति। अकेला राग (खींचे) और अकेला बाहर का समझे बिना करे, उसे पुण्यबन्धन होता है परन्तु साथ में मिथ्यादृष्टि उस पुण्य के परिणाम को कल्याण का कारण मानकर उसमें घुटाया करे, उसे मिथ्यात्व अर्थात् असत्य दृष्टि, दुःखदृष्टि का लाभ होता है। उसे यह लक्ष्मी निश्चय और व्यवहार एक भी नहीं मिलती।

छठवीं (गाथा)

गाथा ६

अब कहते हैं कि हे भगवान आपके बिना अकेले पुण्य की शोभा नहीं है–

जासि सिरी तइ संते तुव अवयणमित्तियेणट्ठा।
संके जणियाणिट्ठा दिट्ठा सव्वट्ठसिद्धावि।।६।।

अर्थ – हे सर्वज्ञ! हे जिनेश! जिस समय आप सर्वार्थसिद्धि विमान में थे, उस समय जैसी उस विमान की शोभा थी, वह शोभा आपके इस पृथ्वी–तल पर उतरने के बाद, आपके वियोग से उत्पन्न हुए दु:ख से नष्ट हो गयी–ऐसी मैं (ग्रन्थकार) शंका (अनुमान) करता हूँ।

भावार्थ – हे भगवान! आप में यह एक प्रकार की विशिष्टता विद्यमान है कि जहाँ आप निवास करते हैं, वहीं उत्तम शोभा भी रहती है क्योंकि जिस समय आप सर्वार्थसिद्धि नाम के विमान में विराजमान थे, उस समय उस विमान की बड़ी भारी शोभा थी, किन्तु जिस समय आप इस पृथ्वी–तल पर उतरकर आये, उस समय उस विमान की भी उतनी शोभा नहीं रही, बल्कि इस पृथ्वी तल की शोभा अधिक बढ़ गयी।

गाथा - ६ पर प्रवचन

जासि सिरी तइ संते तुव अवयणमित्तियेणट्ठा।
संके जणियाणिट्ठा दिट्ठा सव्वट्ठसिद्धावि।।६।।

हे जिन सर्वज्ञ! हे जिनेश्वर! **जब आप सर्वार्थसिद्धि के विमान में थे।** देखो! अब क्या कहते हैं ? परमात्मा पूर्ण आनन्द और पूर्ण स्वरूप चतुष्टय दर्शन–ज्ञान–चारित्र और आनन्द को प्राप्त हुए, ऐसे परमात्मा का जिसे अन्तर्लक्ष्य और दृष्टि हुई और उन परमात्मा की भक्ति जिसे उछली, जहाँ–तहाँ परमात्मा देखता है। वह जहाँ–तहाँ परमात्मा... परमात्मा...। उनकी ही महिमा और अधिकता देखता है। प्रभु! यह ऋषभदेव भगवान सर्वार्थसिद्धि में से आये हैं। सर्वार्थसिद्धि एक देव है ऊपर, वैमानिक का अन्तिम। वे

आये हैं महाविदेहक्षेत्र में से। वहाँ महामुनि थे और तीर्थंकरगोत्र वहाँ बाँधा हुआ था। वहाँ से देह छूटकर सर्वार्थसिद्धि देव वैमानिक का अन्तिम विमान है, उसमें उनका अवतार हुआ। महा आत्मा।

कहते हैं, प्रभु! आप सर्वार्थसिद्धि विमान में थे न, तब उसकी जो शोभा थी, वह आप वहाँ से निकलकर जब मरुदेवी के गर्भ में आये (तो) वहाँ की शोभा लुट गयी। समझ में आया? यहाँ तो कहते हैं कि ज्ञानानन्दस्वरूप प्रभु आत्मा की प्राप्ति हुई, तब उस राग और पुण्य की शोभा कहलाती है। नहीं तो वह शोभा-बोभा-कहलाती नहीं। प्रभु! आप सर्वार्थसिद्धि में थे, तब जो विमान की जैसी शोभा थी, वह शोभा आपके इस पृथ्वी तल पर पधारने से **आपके वियोग से हुए दुःख के कारण नष्ट हो गयी है।** लो! क्या कहा? वहाँ सर्वार्थसिद्धि के विमान को दुःख हुआ कि आहाहा! यों ही ऐसा नहीं कहलाता? पुण्यवन्त प्राणी, पैसा आदि हो, उसे जब जलाने ले गये। पहले जब तक था, तब तक ऐसी शोभा भरपूर सब लगे। यह तो वह पुण्य है न, इसलिए अपने को महिमा उसके प्रति (आती है)। घर शोभता-भरपूर सब लगता है। जहाँ जलाकर आये श्मशान में से... आहाहा! सूनसान-सूनसान। सिरच्छत्र गया। उसकी आज्ञा थी हमारे ऊपर, वह गया।

इसी प्रकार भगवान आप सर्वार्थसिद्धि... देखो! यह भगवान।

हरतां-फरतां प्रगट हरि देखूँ, अरे मेरा जीवन सफल तब लेखूँ।
मुक्तानन्द का नाथ बिहारी रे, ओघा जीवन डोरी हमारी रे॥

परमात्मा पाप के हरनेवाले और विकार का नाश करनेवाले ऐसे हरि अर्थात् परमात्मा। यह हरि, हों! दूसरे हरि-हरि कहते हैं, वह नहीं। शान्तिनाथ! पाप ओघं हरति इति हरि। जिसने विकार के पुण्य-पाप के ओघ को ढ़ेर को नष्ट करके जिसने आत्मदशा प्रगट की, ऐसी जिसे श्रद्धा आत्मा की होने पर भगवान की व्यवहार से श्रद्धा लक्ष्य में वर्तती है, वह कहता है कि 'हरतां फरतां प्रगट प्रभु देखूँ' प्रभु! सर्वार्थसिद्धि में भी तुम थे तो शोभा (थी), हों! परन्तु वहाँ से आप निकले, वहाँ उसे दुःख हुआ। वहाँ की शोभा नष्ट हो गयी और यहाँ की शोभा (हो गयी)। क्या कहते हैं यह?

आत्मा पूर्णानन्द प्रभु, उसकी प्रतीति, रुचि के कारण सब शोभायें हैं। तब उस

शुभभाव को भी व्यवहार की उपमा दी जाती है। और उस आत्मा की शोभा फटकर राग से आत्मा का समीपपना मिटा, राग और पुण्य का समीपपना हुआ (वह तो दुःखदायक है)। और राग तथा पुण्य का समीपपना टलकर स्वभाव का समीपपना हुआ तो पुण्य को शोभा व्यवहार की कहने में आता है और अकेले राग का समीपपना रहा तो प्रभु! वह तो दुःखदायक है। कहो, समझ में आया?

ओहो! मुनियों ने तो वीतरागपने के गीत गाये हैं। 'धर्म जिनेश्वर गाऊं रंग शुं।' आनन्दघनजी कहते हैं—

धर्म जिनेश्वर गाऊं रंग शुं, भंग न पड्शो हो प्रीत जिनेश्वर,
बीजो मन मन्दिर आणुं नहीं, ए अम कुलवट रीत जिनेश्वर,
ए अम कुलवट रीत जिनेश्वर, धर्म जिनेश्वर गाऊं रंग शुं॥

धर्म अर्थात् आत्मा का पवित्र शुद्ध चैतन्यस्वभाव का जहाँ अन्दर आदर हुआ, उसके गीत गाते हैं, वहाँ हे नाथ! हे आत्मा! राग की एकतारूप जो अन्दर भंग पड़ता है, वह नहीं होगा। 'भंग न पडशो प्रीत...' प्रभु! आत्मा के स्वभाव की प्रीति रुचि और सन्तोष जागृत हुआ, वह अब भंग नहीं पड़ो। ऐसे भगवान का स्तवन करते हुए अपने स्वभाव का स्तवन करते हैं। वास्तविक तो ऐसा है। केवलचन्दभाई!

'बीजो मन मंदिर आणुं नहीं'। आत्मा की वीतरागदृष्टि और वीतरागस्वभाव के अतिरिक्त राग को, पर को मन-मन्दिर में अन्तर में आने नहीं दूँगा। 'भंग में पड्शो प्रीत (जिनेश्वर), बीजो मन मंदिर आणुं नहीं, ए अम कुलवत रीत...' अनन्त तीर्थंकर, सर्वज्ञ परमात्मा हुए, हम उनके कुल के पथानुगामी। नेमिदासभाई! ऐसा कहते हैं। उनके कुल के पथानुगामी हम। यह हमारे कुलवट की रीति टूटेगी नहीं। यह हम कुलवट रीत।

यहाँ ऐसा कहते हैं कि हे प्रभु! आप जब विमान में विराजते थे, (तब) उसकी ऐसी शोभा लगती थी और वहाँ से छूटे (तो) शोभा गयी। ऐसी मैं शंका अर्थात् अनुमान करता हूँ। अनुमान अर्थात् यह तो एक... है। शोभा तो है, वह आत्मा की है। वह विमान तो वहाँ का वहीं है। वह कहीं वहाँ से कम-ज्यादा नहीं होते। परन्तु प्रभु वहाँ विराजते

थे और हमारा जो लक्ष्य और दृष्टि थी, हमारी दृष्टि में आत्मा जहाँ था, उसके कारण सब शोभा थी। बाकी बाहर की सामग्री, स्त्री, पुत्र, परिवार और खम्मा-खम्मा छियानवें हजार स्त्रियाँ चक्रवर्ती को, छियानवें करोड़ सैनिक, रत्न के ढ़ेर जिसके घर में। वह उसकी शोभा नहीं है। शोभा तो चैतन्य तत्त्व की है। ऐसे स्वभाव को पाकर वहाँ पड़े थे, इसलिए विमान की शोभा थी। वहाँ से निकले, उसकी शोभा नष्ट हो गयी।

हे भगवन! आपमें एक प्रकार की अति महान विशिष्टता वर्तती है। विशिष्टता यह है कि जहाँ आप निवास करते हो, वहाँ ही... कहो, समझ में आया? **वहाँ ही उत्तम शोभा रहती है। क्योंकि जब आप सर्वार्थसिद्धि नामक विमान में विराजमान थे, तब उस विमान की बहुत बड़ी शोभा थी।** बहुत बड़ी शोभा थी। **परन्तु जब आप वहाँ से उतरकर इस पृथ्वी के ऊपर पधारे...** अवतरित हुए, **तब उस विमान की शोभा पहले जैसी नहीं रही। परन्तु इस पृथ्वीतल की शोभा अधिक हो गयी।** यह तू (जहाँ) हो, वहाँ (सब शोभा है)। नियमसार में कहते हैं न आचार्य? मेरे दर्शन में भी आत्मा, ज्ञान में भी आत्मा और चारित्र में भी आत्मा। **'जस्स संणिहिदो अप्पा' 'जस्स संणिहिदो अप्पा'**। जहाँ आत्मा जिसके अन्तरस्वभाव की दृष्टि में, समीप में वर्तता है, वहाँ सब दर्शन, वहाँ ज्ञान सब, चारित्र, आनन्द, शान्ति और शोभा है। परन्तु आत्मा दृष्टि के समीप में से गया और पुण्य और पाप तथा निमित्त की दृष्टि के समीप में आया, सब शोभा भ्रष्ट (हो गयी)। चन्दुभाई! आता है न? नियमसार में आता है।

'जस्स संणिहिदो अप्पा' जिसका आत्मा सन्निद्ध—निकट में वर्तता है। तथा राग और पुण्य तथा निमित्त जिसके वियोग में वर्तते हैं दृष्टि में। पृथक्रूप से कहो, वियोगरूप से कहो, भिन्नरूप से कहो। और जिसकी दृष्टि में रागरहित, पुण्य-पाप के मलिनभाव रहित चैतन्यस्वभाव की समीपता में जो वर्तता है, वहाँ दर्शन है, वहाँ ज्ञान है, वहाँ चारित्र है, वहाँ तप है और वहाँ धर्म है। अन्यत्र कहीं धर्म नहीं होता। अतः यहाँ कहते हैं, यहाँ पृथ्वीतल की शोभा अब अधिक हो गयी। वहाँ की शोभा टलकर यहाँ की हुई।

सातवीं (गाथा)

गाथा ७

अब, सर्वार्थसिद्धि में से यहाँ भगवान अवतरित हुए, तब इस पृथ्वी का नाम वसुन्धरा पड़ा–ऐसा कहते हैं—

णाहिघरे वसुहारावडणं जं सुइर महितहो अरणी।
आसि णहाहि जिणेसर तेण धरा वसुमयी जाया।।७।।

अर्थ – हे जिनेश्वर! जिस समय आप इस पृथ्वीतल पर उतरे थे, उस समय जो नाभि राजा के घर में बहुत काल तक धन–वर्षा आकाश से हुई थी, उसी से हे प्रभो! यह पृथ्वी वसुमती हुई है।

भावार्थ – पृथ्वी का एक नाम वसुमती है। जो धन को धारण करनेवाली होवे, उसी को वसुमती कहते हैं। इसलिए ग्रन्थकार उत्प्रेक्षा करते हैं कि इस पृथ्वी का नाम वसुमती जो पड़ा है, वह भगवान! आपकी कृपा से ही पड़ा है क्योंकि जिस समय आप सर्वार्थसिद्धि विमान से पृथ्वी–मण्डल पर उतरे थे, उस समय बराबर पन्द्रह मास तक रत्नों की वृष्टि इस पृथ्वी–मण्डल पर नाभि राजा के घर में हुई थी, इसलिए पृथ्वी के समस्त दारिद्रय दूर हो गये, किन्तु इससे पूर्व इसका नाम वसुमती नहीं था।

गाथा - ७ पर प्रवचन

णाहिघरे वसुहारावडणं जं सुइर महितहो अरणी।
आसि णहाहि जिणेसर तेण धरा वसुमयी जाया।।७।।

लो! अब यहाँ का लिया। आहाहा! जहाँ हो वहाँ तू और तेरे ज्ञान के गीत और ज्ञान की प्रीति-रुचि न हो तो तू कहीं अन्यत्र नहीं।

हे जिनेश्वर! आप जब इस पृथ्वीतल पर अवतरित हुए, तब नाभिराजा के घर में बहुत काल तक... क्या कहा? **आकाश में से बहुत काल तक जो धन की**

वृष्टि हुई... धन की धारा। धन की धारा अर्थात् धन की वर्षा हुई, **उससे यह पृथ्वी वसुमति...** क्या कहते हैं ? वसु अर्थात् पृथ्वी। वसु अर्थात् पैसा। इस वसुरहित नर पशु नहीं कहलाते ? वसुरहित नर पशु। भगवानजी भाई! कहने की बात है। और जहाँ वसु हो वहाँ पागल हो, वह चतुर कहलाता है।

मुमुक्षु : गांगजीभाई कहलाता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। वसु आया, इसलिए गांगजीभाई, नहीं तो गांगुलो कहलाता था। केवलचन्दभाई! यह दुनिया की बातें। वसु, यह नहीं।

यहाँ तो वसु अर्थात् लक्ष्मी। आत्मा की लक्ष्मी जो है, वह जहाँ अन्तर में से श्रद्धा-ज्ञान-चारित्र में प्रगट हुई, तब शोभा को प्राप्त हुआ। मैं शोभा को प्राप्त हुआ और पृथ्वी भी शोभा को प्राप्त हुई। यहाँ तो कहते हैं कि यह पृथ्वी तब से वसुमति कहने में आयी है। पहले वसुमति नहीं थी। वसु अर्थात् लक्ष्मीवाली तब कहलायी है। है तो अनादि की परन्तु ऐसे पृथ्वी को भी इस ज्ञान से देखता है। हम पृथ्वी को नहीं देखते, हम हमारे ज्ञान को देखते हैं। क्या कहा, समझ में आया ?

वहाँ विमान की शोभा जो थी, वह हमारे ज्ञान का ज्ञेय, उसमें इस ज्ञेय को वास्तव में हम देखते हैं। हम तो उस काल में भी हमारे ज्ञान को ही देखते हैं, हम स्वर्ग में थे तब दूसरे भव में। इसी प्रकार परमात्मा! आप भी आपके ज्ञान को ही देखते और देखते थे। यहाँ नीचे अवतरित हुए तो वसु-पृथ्वी को आप नहीं देखते। पृथ्वी से शोभा नहीं है। आपके ज्ञान की ऊर्ध्वता पहले (हुई),... जिसके ज्ञान में स्व आये बिना पर का ज्ञान होता नहीं। अर्थात् जिसमें ज्ञान की मुख्यता हुई, उसके कारण यह सब शोभा पृथ्वी हुई है। समझ में आया ? समझना भारी मुश्किल पड़े, ऐसा है। कुँवरजीभाई! क्या इसमें एक-एक लाईन याद रहे, ऐसा है।

मुमुक्षु : उस लाईन का मुद्दा—वस्तु का याद रहे।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह वसु और धूल में यह वसु कहाँ थी ? इस वसु के ढ़ेर पड़े हों और फिर दुःख आवे शरीर में, रोग आवे, शास्त्र में ऐसा लेख है कि तू मेरी... मेरी लक्ष्मी करता और उसका ढ़ेर कर तेरे पास और उसका ढ़ेर करके प्रार्थना कर। हे

लक्ष्मी ! तेरे लिये खाया नहीं, पिया नहीं, सुख से सोया नहीं और लड़के के लिये, प्राप्त करने के लिये मर गया पूरी जिन्दगी। यह ढ़ेर (हुआ परन्तु) अब मेरी दुर्गति होगी, यहाँ से मरकर, तो तू किंचित शरण करना लक्ष्मी !

मुमुक्षु : लक्ष्मी ने कुछ जवाब दिया या नहीं ?

पूज्य गुरुदेवश्री : दिया उसने कि हम किसी के हुए नहीं और किसी के कहीं हम रहे नहीं। तू व्यर्थ में ममता करके यहाँ छिपता है। लक्ष्मी का ढ़ेर ऐसा आता है, भाई इसमें। सूयगडांग में एक लेख आता है। लक्ष्मीवाला था एक बड़ा और फिर उसकी मरने की तैयारी हुई। पश्चात् ऐसा कि सब लक्ष्मी का ढ़ेर कराया कि मेरी आमदनी मुझे मेरे पास बताओ। ऐसे ढ़ेर किये।

मुमुक्षु : सिकन्दर....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, वह तो सिकन्दर की बात अलग है। यह तो श्वेताम्बर में सूयगडांग में आता है। यह तो आता है, मुझे खबर है सिकन्दर की। खबर तो होवे न सब बातों की। बहुत छोटी उम्र से सुनते आते हैं न। वह सिकन्दर मर गया, तब कहे यह सब ढ़ेर करो और मरते समय जिसने मेरे वर्षासन खाये, ऐसे डाक्टरों के, वैद्यों के, हकीमों के सिर पर मेरा मुर्दा उठवाना। समझ में आया ? हकीमों को हमने उत्तराधिकार दिया वे हमको रख सके नहीं तब मेरा जनाजा उन वैद्यों, हकीमों के सिर पर (उठवाना)। लोगों को खबर पड़े कि इतने अरबों रुपये थे, तथापि इसे कोई रख नहीं सके। उन हकीमों के सिर पर उठवाकर गाड़ने ले जाते हैं। कहो, बराबर होगा या नहीं ? कुँवरजीभाई ! कौन रखता होगा ? हकीम रखता होगा ? हकीम उसे ले जाए। और यह सब मेरे जो बन्दूकों के लश्कर मुर्दे के सामने करना। जनाजा के सामने आगे रखना, ढ़ेर करना और वहाँ कब्र में जहाँ गाड़ो, वहाँ ढ़ेर दिखाना कि यह मर गया, कुछ ले नहीं गया और कुछ हो.. हा.. हो.. हा.. मर गया, वह मर गया। हकीम ने रखा नहीं, पैसे ने रखा नहीं, पुत्र ने रखा नहीं। बड़े-बड़े लश्कर की बन्दूकों जहाँ हजारों करे... और ऐसा अमुक-अमुक करते हैं न ! उतरे तब नहीं करते ऐसा करके ?

मुमुक्षु : सलामी देते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : सलामी देते हैं, सलामी। वहाँ दी थी न एक बार दयाशंकरभाई की। उस मैदान में। अपने है न मन्दिर के पास मैदान? दयाशंकरभाई को सब पुलिस ने सलामी दी। वह दयाशंकर वापस बैठ गया जूनागढ़।

यहाँ तो कहते हैं, अरे! यह बाहर की सलामी और बाहर व्यर्थ-व्यर्थ श्मशान में, उस श्मशान में लकड़ियाँ चित्रामण करके, रंग भरकर या पॉलिश करके उसे जलावे या ऐसे और ऐसे लकड़ियाँ और कण्डे जलावे, उसमें मुर्दे को कुछ नहीं है। होगा उसमें कुछ शोभा होगी या नहीं मुर्दे की? उसमें आता है। मुर्दे को ऐसा कहे। मुर्दा होवे न, उसके चार नारियल बाँधे हो न, चारों ओर चार। दुःख होता है, उसके घरवालों को अरे! परन्तु नारियल बाँधे हैं न। अर..र..र! परन्तु यह बीस वर्ष का जवान। अठारह वर्ष की छोड़कर के गया, चला जाए। हाय.. हाय..! 'हाड जले ज्यों लकड़ी, घास जले ज्यों केश' घास जले, वैसे केश जलते हैं। आहाहा! यह बात यहाँ नहीं, यहाँ तो कहते हैं।

यहाँ तो जिसने शाश्वत् चैतन्य तत्त्व दृष्टि में लिया, उसकी लक्ष्मी की शोभा उसके काल में उसे स्वयं को प्रगट यहाँ हो जाती है। मैं जहाँ लक्ष्मी-आत्मा के चैतन्य की लक्ष्मीसहित होऊँ, वहाँ ही मेरी ओर पर की सब शोभा है। उसके कारण है, पर के कारण मेरी कुछ शोभा नहीं है।

धन की वर्षा हुई। क्या कहते हैं? भगवान जन्मने से पहले, छह महीने पहले इन्द्र आकर वर्षा करते हैं। आकाश में से स्वयं वर्षा करते हैं, आकाश के परमाणुओं का स्कन्ध, सहज स्वाभाविक पुरुष है और आत्मा के भान की भूमिका लेकर आये हैं तो वे परमाणु के स्कन्ध हीरा और रत्नरूप परिणमकर ढ़ेर उसके, क्या कहलाते हैं? उनके मकान के आँगन में, उस मकान के आँगन में आकाश में से हीरे गिरते हैं। ओहोहो! और इन्द्र आकर वर्षा करते हैं। प्रभु! आपकी शोभा तो देखो! इस आपकी शोभा के कारण यह सब शोभा है। आपने यदि चैतन्यमूर्ति का भान न किया हो तो शोभा कहीं है नहीं। कहो, यह छह महीने और नौ महीने माता के गर्भ में रहते हैं, तब तक इन्द्र नौ महीने (कुल पन्द्रह महीने) वर्षा करते हैं। इन्द्र आकर, इन्द्र जिनके सेवक इन्द्र जिनके किंकर। किंकर। क्या करें? क्या दें? क्या लें? ऐसा पुण्य आत्मा की सत्शक्ति के स्वभाव के अवलम्बन से जिसकी भूमिका है, उसे ऐसे राग की वृत्ति में ऐसा पुण्य

बँधता है। तब उस पुण्य को व्यवहार सत्पुण्य का आरोप दिया जाता है। वह सत्पुण्य, लो। यह सत्स्वभाव प्रगट हुआ। अर्थात् राग हुआ, उसे सत्पुण्य कहने में आया, तब उस पुण्य की शोभा हुई।

आकाश में से जो वसु की धारा, धन की वर्षा हुई, उसके कारण यह पृथ्वी वसुमति हुई। नहीं तो यह वसुमति थी नहीं। प्रभु! आपके कारण है, आपके कारण यह सब है। अर्थात् चैतन्यस्वभाव निर्लेप, निर्दोष, निर्ग्रन्थस्वरूपी प्रभु की श्रद्धा-ज्ञान और रमणता के कारण सब क्रियाएँ व्यवहार की, पूजा-भक्ति-दया-दान और व्रत और व्यवहार की शोभा आत्मा में आवे। नहीं तो उन्हें व्यवहार भी नहीं कहा जाता। कहो, समझ में आया इसमें? **पृथ्वी का नाम वसुमति है और जो धन को धारण करनेवाली हो, उसे वसुमति कहा जाता है। इसलिए ग्रन्थकार उत्प्रेक्षा अलंकार करते हैं।** उत्प्रेक्षा—इस प्रकार की विचारधारा में पुण्य का ठाठ, उसे न गिनकर पवित्रता को गिना और पुण्य की शोभा व्यवहार से है, ऐसा कहना चाहते हैं।

और इस पृथ्वी का जो वसुमति नाम पड़ा है, वह भगवान के-आपकी कृपा से ही पड़ा है। हे भगवान! आपकी कृपा से पड़ा है। **क्योंकि आप सर्वार्थसिद्धि विमान में से इस पृथ्वी मण्डल पर आये, पृथ्वी मण्डल पर अवतरित हुए, तब ठीक पन्द्रह मास—महीने तक रत्नों की वृष्टि हुई।** जगत को आचार्य तो कहना चाहते हैं कि पवित्रता की भूमिका में पुण्य का फल कैसा (होता है), यह लोगों को विश्वास में आवे, ऐसा नहीं है। पवित्र चैतन्यशक्ति का प्रभु, उसकी तो प्रतीति कैसे आवे? परन्तु उसकी प्रतीति की भूमिका में बँधा हुआ राग और राग के फलरूप जो संयोग आया, पन्द्रह महीने रत्नों की वृष्टि (होती है), लोगों को विश्वास में नहीं आता। समझ में आया? पन्द्रह महीने वृष्टि। छह महीने पहले जहाँ नरक में से भी तीर्थंकर निकले, जैसे यह श्रेणिक राजा अभी नरक में है। ८४ हजार वर्ष का आयुष्य है। जब छह महीने बाकी रहेंगे, तब तीर्थंकररूप से जहाँ अवतरित होंगे, आयुष्य बँधेगा। आयुष्य बँधेगा तो देव आकर यहाँ माता के वहाँ उनके आँगन में रत्न की वृष्टि करेंगे। और फिर माता के उदर में आने के बाद तो नौ महीने वृष्टि (होगी)। पन्द्रह महीने। सवा वर्ष। उनका सवाया काम है। भगवानजीभाई! रत्न के ढ़ेर। यहाँ पाँच-पच्चीस लाख हो, वहाँ ओहोहो! हमने

प्राप्त किये, अपने को मिले। धूल भी मिली नहीं। ममता मिली है। यह हमको मिले, ऐसी ममता (मिली है)।

यहाँ आचार्य महाराज कहते हैं कि प्रभु! पृथ्वी का नाम वसुमति आपके कारण पड़ा है, हों! आप हो वहाँ वसुमति; आप न हो वहाँ इस पृथ्वी को वसुमति नहीं कहते। समझ में आया इसमें? **जब आप सर्वार्थसिद्धि विमान में से इस पृथ्वी मण्डल पर आये, तब ठीक पन्द्रह महीने रत्नों की वृष्टि हुई। इस पृथ्वी का नाम तब पृथ्वी मण्डल में नाभिराजा के घर में वृष्टि हुई थी, इसलिए पृथ्वी का समस्त दारिद्र दूर हुआ।** क्या कहते हैं? इतनी बाहर में लक्ष्मी आयी कि जगत के प्राणी निर्धन का दारिद्र मिटा। हम भी प्रभु **जहाँ आपकी वस्तु की स्थिति को सुनते हैं, देखते हैं, तब हमारी दरिद्रता नष्ट हो जाती है।** और दरिद्रपना नाश होकर पुण्य बँधने से जो लक्ष्मी बाहर आती है, उसका व्यवहार से दारिद्रपना हमारा और पर का भी नाश होता है। यह सब शोभा चैतन्य चमत्कार आत्मा के, परमात्मा के गुण गाने में है। यह परमात्मा सर्वज्ञ है, यह प्रतीति में आना और उस प्रतीति से स्वसन्मुख होना, यह उसकी शोभा, यह सब शोभा है। इसके अतिरिक्त दूसरी शोभा होती नहीं।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)